आषाढ़ कृष्ण १५, सोमवार, दिनांक-२३-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-३

क्रमबद्ध कहा... प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमसर—एक के बाद एक... एक के बाद एक होनेवाली होगी। (शास्त्र में) इतना आया है कि क्रमरूप और अक्रमरूप—पर्याय दो प्रकार की है। ३८वीं गाथा। ३८। एक... एक लेना है। '**अहम् एको**' वहाँ लिया है क्रमरूप और अक्रमरूप—दोनों ही पर्याय से भिन्न आत्मा है। तो ये अक्रम क्या है? यह अक्रम (अर्थात्) इस क्रमबद्ध को छोड़कर अक्रम (होती है)—ऐसा नहीं। एक समय में गति आदि होती है, यह एक के बाद एक होती है, (इसलिए) क्रम कहने में आता है और एक ही समय में योग, राग, लेश्यादि (पर्याय) होती है, उसको अक्रम कहने में आया है। होती है तो क्रमबद्ध, परन्तु एक साथ में योग, लेश्या, रागादि होता है पर्याय में, उसे अक्रम कहा। अक्रम का अर्थ एक साथ बहुत पर्याय हैं। और क्रम (का अर्थ)—एक समय में गति है तो दूसरे समय में वही गति (पर्याय) नहीं, तो यह क्रम(रूप) है। गति में क्रम है और योग और लेश्या, राग अक्रम हैं अर्थात् एक साथ है। है तो क्रमबद्ध।

(समयसार) ३८ गाथा में '**एको**' जहाँ लिया है न। '**अहम् एको**' लिया है वहाँ। मैं... क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान भाव से भिन्न मैं हूँ। आहाहा! मैं एकरूप शुद्ध चिदानन्द हूँ। क्रमरूप और अक्रमरूप से मैं भिन्न हूँ। क्रम-अक्रम हैं, यह व्यवहारिकभाव हैं। ३८ गाथा में 'एक' की व्याख्या। दूसरी जगह आता है तत्त्वार्थ राजवार्तिक में। परन्तु यह क्रम-अक्रम पर्याय की बात है। बाकी क्रम और अक्रम दूसरी रीति से लें तो गुण है, यह अक्रम है और पर्याय है, वह क्रम है। समझ में आया? जो ३८ गाथा में यह लेना नहीं और यहाँ भी यह लेना नहीं। आहाहा! है पण्डितजी? क्रम-अक्रम। अपनी पर्याय में क्रम से एक समय में एक गति होती है, दूसरी नहीं, तो इसे क्रम कहने में आता है। है तो पर्याय। और एक समय में... राग, योग, लेश्यादि एक समय में साथ में हैं। है तो पर्याय है, है तो क्रमबद्ध में। आहाहा! परन्तु एकसाथ होने से अक्रम कहने में आया है।

तो कोई दलील करता है कि देखो! अक्रम में क्रम लिखा है। यह तत्त्वार्थ राजवार्तिक

में है। क्रम... अक्रम... परन्तु ये तो दूसरी बात है। पर्याय में एकसाथ योग, लेश्यादि हो तो उसको अक्रम कहते हैं अथवा... यहाँ ३८ (गाथावाली अपेक्षा) नहीं, परन्तु दो जगह आता है कि गुण अक्रम है और पर्याय क्रम है। गुण सहवर्ती हैं (अर्थात्) एक साथ अनन्त हैं। तो 'एक साथ में' (का अर्थ) द्रव्य के साथ हैं ऐसा नहीं। क्या कहा? आत्मा में गुण अक्रम हैं—सहवर्ती हैं—एक साथ हैं। तो एक साथ गुण हैं, वह द्रव्य में एक साथ हैं, इसलिए (सहवर्ती कहा—ऐसा) नहीं, परन्तु गुण एक साथ अनन्त हैं, इसलिए सहवर्ती कहने में आया है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। क्या कहा?

कि जो गुण हैं... भगवान आत्मा एकरूप द्रव्य है और गुण अनन्त हैं। गुण एक साथ—सहवर्ती है, सहवर्ती अर्थात् साथ में वर्त रहे हैं। सहवर्ती अर्थात् द्रव्य के साथ गुण हैं, इसलिए सहवर्ती कहा, ऐसा नहीं। द्रव्य के साथ तो पर्याय भी है।

मुमुक्षु : अनन्त गुण एक साथ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त गुण साथ में हैं और पर्याय एक साथ में नहीं—यह सिद्ध करना है। क्रमबद्ध सिद्ध करना है न? गुण है... समझ में आता है? सूक्ष्म है भगवान! मार्ग तो अन्तर की सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! वीतराग परमात्मा... यहाँ कहते हैं... ३८ में गुरु ने समझाया... गुरु ने समझाया शिष्य को, ऐसा पाठ है। तो शिष्य को समझाया तो यह समझाया। प्रभु! एक बार सुन ले! तेरी पर्याय में अक्रम-क्रम दोनों ही हैं। दोनों का अर्थ—क्रमसर पर्याय है, एक गति है, तब दूसरी गति नहीं, वह क्रम और एक साथ में राग, योग, लेश्या; इसलिए अक्रम है। पर्याय क्रमवर्ती से छूटकर अक्रम हो जाती है, ऐसा नहीं। एक साथ रहती है, इसलिए अक्रम कहने में आया है। और गुण को भी अक्रम कहने में आया है। भगवान आत्मा गुण और पर्याय के भेद से भी रहित है। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु एकस्वरूप से विराजमान है, उसकी दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है, उसका नाम प्रथम धर्म की सीढ़ी है। आहाहा! तो उसमें गुण को सहवर्ती कहा (क्योंकि) गुण एक साथ रहते हैं। पर्याय एक साथ नहीं रहती। वहाँ इतना क्रमवर्ती कहा। यहाँ जरा क्रमबद्ध कहा। निश्चय से क्रम में एक के बाद एक

पर्याय होनेवाली है, वह होगी। आगे-पीछे पर्याय द्रव्य में होगी, ऐसा नहीं। प्रत्येक द्रव्य में पर्याय की व्यवस्थित व्यवस्था है। व्यवस्था अर्थात् विशेष अवस्था। उस उस समय में यह पर्याय अपने से व्यवस्थित है। दूसरा कोई पर्याय को करे अथवा उस पर्याय को फेरफार करे—ऐसा नहीं। दूसरी बात। जरा ख्याल में आयी बात।

एक आत्मा में ४७ शक्तियाँ—गुण लिये हैं। हैं अनन्त, (परन्तु) ४७ का नाम यहाँ लिया। ४७ शक्ति में एक ऐसा भाव नाम का गुण है। भाव नाम का गुण है, उस गुण का स्वरूप क्या? सूक्ष्म है भगवान! कोई भी पर्याय जो समय में होनेवाली (है, यह) होगी, यह भावगुण का कार्य है। समझ में आया? जो समय में जो पर्याय होगी, वह भावगुण का कार्य है। भावगुण के कारण से पर्याय जो समय में भवन—होती है, यह भावगुण के कारण से है, आगे-पीछे नहीं। एक बात। दूसरी बात। भावगुण है, उसका अपने अनन्त गुण में रूप है। तो भावगुण (है तो) उसमें वर्तमान पर्याय होनेवाली होगी, यह भावगुण के कारण से (होगी)। ऐसे अनन्त गुण में भी भावगुण का रूप है। तो अनन्त गुण में भावगुण के कारण... आहाहा! समझ में आता है, भाई? सूक्ष्म है, भगवान! यह क्रमबद्ध तो सूक्ष्म है। अभी पण्डितजी ने उसका स्पष्टीकरण किया। हमारे तो चलती है ७२ के वर्ष से। क्रमबद्ध में समझे? कहा था न कल? कि केवली ने देखा (ऐसा) होगा। बात तो सच्ची ऐसी ही है। जिस समय में जो पर्याय होगी, परन्तु केवली ने देखा ऐसा होगा, ऐसा पर से लेते हैं, उसको छोड़ दे। समझ में आया?

द्रव्य की पर्याय जब होनेवाली है, तब होगी, यह द्रव्य का स्वभाव है। ये द्रव्य में भाव नाम का एक गुण है कि जिसके कारण से जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, यह भावगुण से होती है। और वह पर्याय (व्यय होकर) दूसरी होती है तो उसमें एक भाव-अभाव नाम का गुण है। भगवान आत्मा में भाव-अभाव नाम का एक गुण है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! अनन्त गुण की पर्याय जो वर्तमान में है, यह होनेवाली है, वही है, परन्तु यह भाव का अभाव... भाव का अभाव अर्थात् वर्तमान में है, उसका अभाव (होना), ऐसा एक गुण है। (और अभाव-भाव) गुण के कारण से जो वर्तमान में पर्याय-भाव नहीं, उसका—अभाव का भाव, यह करना नहीं पड़े। मैं करूँ—ऐसा विकल्प (करना) नहीं (पड़ता)। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है।

यहाँ तो क्रमबद्ध आया, परन्तु दूसरी जगह क्रम-अक्रम (ऐसा भी) है, परन्तु ये क्रम-अक्रम पर्याय की बात है। यह क्रम में एक पीछे-पीछे होगी (और) अक्रम (भी) होगी—ऐसा नहीं। पर्याय में एक साथ रहनेवाली पर्याय को अक्रम कहते हैं और एक साथ नहीं रहनेवाली पर्याय को क्रम कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो... आहाहा! भाव नाम का गुण है... भाव नाम के दो गुण हैं आत्मा में। एक भावगुण ऐसा है कि षट्कारक से पर्याय में जो विकृतभाव होता है क्रमसर में, तो भावगुण के कारण से विकृतपर्याय का अभावरूप परिणमन होना, वह भावगुण का कार्य है। यहाँ तो क्रमबद्ध में निर्मल पर्याय प्रगट होती है, यह सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि आत्मा में क्रमबद्ध (परिणमन) है, ऐसा जब निर्णय करते हैं, तब तो ज्ञायकस्वरूप पर दृष्टि होती है। और ज्ञायकस्वभाव में अनन्त गुण हैं, तो अनन्त गुण में एक भाव नाम का भी गुण है (और एक) दूसरा भी भाव नाम का गुण है। दो भाव नाम के गुण हैं। एक भाव गुण का अर्थ कि जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह भाव (गुण) के कारण से होगी। इस भाव(गुण का) रूप अनन्त गुण में रहता है तो अनन्त गुण (में उसके) कारण से होगी। एक बात।

दूसरी बात। षट्कारक से जो पर्याय में विकृति होती है, यह क्रम (बद्ध के निर्णय) से नहीं, द्रव्य-गुण से नहीं, पर्याय में (अपने) षट्कारक से विकृत राग कर्ता, राग कार्य, राग सम्प्रदान आदि कारण हैं। रागादि, द्वेषादि, विषयवासना आदि जो पर्याय में षट्कारक परिणमन होता है, उसमें एक ऐसा गुण है कि विकार का अभाव होकर अविकार परिणमन होता है। भाव गुण एक। ४७ शक्ति में। सब आ गया है। व्याख्यान सब लिख गये हैं और प्रकाशित होंगे। समझ में आया? अपने में एक भावशक्ति—गुण ऐसा है कि जो विकृत परिणमन पर्याय में होता है उसका, भावगुण के कारण से विकृत के अभावरूप परिणमन होता है। समझ में आया? विकृत के अभावरूप परिणमन होता है। समझ में आया? विकृत के अभावरूप धर्मरूप—मोक्षमार्ग की पर्यायरूप परिणमन होता है। आहाहा! क्रमबद्ध में भी ऐसा निकालना है। समझ में आया?

कोई कहे कि क्रमबद्ध है... क्रमबद्ध है तो (होनेवाली पर्याय) होगी। परन्तु सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! पर्याय तो क्रमबद्ध ही होती है, परन्तु क्रमबद्ध में अकर्तापना

कब आता है ? मैं करूँ, मैं इस पर्याय को करूँ, तब तक तो विकल्प है और कर्तापने का भाव है। पर्याय क्रमबद्ध होती है और मैं करूँ, ऐसा विकल्प भी नहीं और पर्याय होती है, उसे मैं करूँ, ऐसा (कर्तापने का) भाव भी नहीं। आहाहा! सेठ! ऐसी सूक्ष्म बात है। आहाहा! प्रभु अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु... 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसी जो अन्दर चीज़ है, वह पर्याय से भिन्न है। आहाहा! ये क्रमबद्ध की पर्याय और अक्रम पर्याय... अक्रम अर्थात् साथ में रहनेवाले योग, लेश्यादि, उससे भी रहित हैं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा जब दृष्टि में आता है, तब उसमें जितने गुण हैं, उन गुण में भावगुण का रूप है, उस कारण से एक समय में अनन्त गुण की पर्याय होती ही है। मैं करूँ तो होती है, ऐसा है नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यही समझने जैसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझने जैसी बात है। सूक्ष्म बातें, बापू! समझ में आया ? प्रियंकरजी! यह प्रियंकर करनेवाली चीज़ है। आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में वर्तमान ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव है। त्रिकाल रहेगा, ऐसा त्रिकाल की अपेक्षा में भी व्यवहार आ गया। कथन आवे, परन्तु बाकी एक समय में परमात्मा स्वयं पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव है। क्रमबद्ध के निर्णय में अकर्तापना आता है अथवा ज्ञातापना आता है। ज्ञातापना या अकर्तापना कब आता है ? कि क्रमबद्ध के लक्ष्य में पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, जिसमें से (पर्याय) क्रमबद्ध होती है, उस द्रव्य पर दृष्टि देना। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त गुण का विकृतरूप परिणमन जो होता है... परन्तु उसमें ऐसा गुण है कि द्रव्य को पकड़ा... क्रमबद्धपर्याय में द्रव्य को— ज्ञायक को पकड़ा, परन्तु पर्याय में पर्याय का निर्णय पर्याय से नहीं होता। पर्याय का ज्ञान, द्रव्य का निर्णय करने से पर्याय का ज्ञान होता है। आहाहा! तो यहाँ कहते हैं कि पर्याय में जो क्रमसर पर्याय है, उसका जब निर्णय करते हैं तो ज्ञायक की दृष्टि होती है। ज्ञायक में 'भाव' नाम के दो गुण हैं। एक भाव नाम के गुण के कारण से अनन्त गुण में ऐसी शक्ति अपने से है कि उस समय में पर्याय होगी, होगी और होगी। मैं करूँ तो होगी, ऐसा नहीं। और एक भावगुण ऐसा है कि पर्याय का षट्कारक परिणमन होता है

और क्रमबद्ध का निर्णय जब ज्ञायक पर जाता है, तब उसको निर्विकारी—धर्म की पर्याय उत्पन्न होती है। वह भावगुण... समझ में आया? आहाहा!

ऐसी व्याख्या अब। वह तो भाई! व्रत करो, अपवास करो, तपस्या करो, भक्ति करो, वह सीधा सट था। वह सब तो भटकने का था। राग की क्रिया है और राग का कर्ता होता है। आगे-पीछे करने जाता है तो मिथ्यात्व ही बढ़ता है। आहाहा! क्योंकि जो द्रव्य में भाव नाम का गुण-स्वभाव है, उस गुण के कारण से वर्तमान पर्याय होगी, होगी और होगी। आगे-पीछे नहीं होगी, जिस समय में होनेवाली (है, तब) होगी ही होगी। मैं करूँ तो पर्याय होती है, ऐसी दृष्टि भी उड़ जाती है। आहाहा! ऐसा विकल्प तो उड़ जाता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो मूल तत्त्व है। परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने जो कहा, वह कोई पंथ नहीं, वह कोई पक्ष नहीं, यह तो ऐसा वस्तु का स्वरूप है। आहाहा!

उस वस्तु का स्वरूप यह है कि जब उस वस्तु की दृष्टि होती है और क्रमबद्ध पर्याय पर से लक्ष्य छूट जाता है, तब उसकी द्रव्य की दृष्टि होती है तो द्रव्य में दो भावगुण पड़े हैं (उसमें से) एक गुण के कारण से विकृतरूप परिणमन के अभावरूप परिणमन होता है। विकृतरूप परिणमन के अभावरूप परिणमन होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रयप परिणमन होता है। और (दूसरे) एक भाव (गुण) के कारण उस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। आहाहा! मैं वह पर्याय करूँ तो द्रव्य में होगी, ऐसा प्रश्न है नहीं, ऐसा विकल्प है नहीं। डाह्याभाई! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

वस्तु में विकल्प तो नहीं, परन्तु जब भावगुण के कारण से वो पर्याय होगी, पीछे मैं करूँ, ऐसा विकल्प का लक्ष्य भी है नहीं। यह पर्याय करूँ ऐसा लक्ष्य भी उसमें है नहीं। उसका लक्ष्य तो द्रव्य पर जोर आया है कि जिसमें भाव, अभाव, अभाव-भाव (आदि) अनन्त गुण पड़े हैं। सूक्ष्म बात है। एक-एक बात पर पहले बहुत व्याख्यान हो गये हैं। ये छप गये हैं। मुम्बई निर्णय किया न। ३५ छपाना है। चार मास में खास इस पर लिया था सब—४७ शक्तियाँ, ४७ नय, २० अलिंगग्रहण के बोल, छह अव्यक्त के बोल आदि पर व्याख्यान चार मास में एक साथ लिये थे। उसमें यह आया है कि भाव नाम के दो गुण आत्मा में हैं, क्रमबद्ध की पर्याय का निर्णय जब करते हैं, तब उसकी

दृष्टि द्रव्य पर जाती है और द्रव्य में गुण पड़ा है भाव नाम का, उस कारण से विकार रहित परिणमन होता है। वरना तो क्रमबद्ध में विकार भी आता है। समझ में आया? परन्तु क्रमबद्ध का निर्णय करने जाते हैं, वहाँ क्रमबद्ध में निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

तो कहते हैं कि **प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** यहाँ निर्मल परिणाम को अपना परिणाम कहा। समझ में आया? वरना पर्याय है, वह द्रव्य से भिन्न है। पर्याय तो द्रव्य के ऊपर तैरती है। पर्याय का प्रवेश द्रव्य में है नहीं। परन्तु यहाँ तो इतना सिद्ध करना है कि जब जो परिणाम होता है, वह क्रमसर होता है— क्रमबद्ध होता है। साधारण भाषा तो ऐसे आती है न कि गुण सहवर्ती हैं और पर्याय क्रमवर्ती हैं। ऐसा साधारण शब्द आया है। यहाँ इसके उपरान्त 'क्रमनियमित' (शब्द पड़ा है)। क्रमवर्ती तो है, परन्तु नियम से जो होनेवाली है, वह होगी। आहाहा! डाह्याभाई!

मुमुक्षु : जो पर्याय आनेवाली है, वही होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही होगी। सत् है न? वास्तव में तो सत् पर्याय...

यहाँ तो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी क्रमबद्ध का निर्णय करने से द्रव्यस्वभाव का निर्णय होता है, उसका परिणमन निर्मल ही होता है। समझ में आया? विकार होता है, परन्तु विकार से रहित (दृष्टि का) परिणमन उसका होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! बाबूभाई! ऐसी बात है। लोगों को बैठे, न बैठे, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। वस्तु ही ऐसी है। आत्मा है और आत्मा में अनन्त गुण हैं, तो अनन्त गुण में एक गुण ऐसा है। वर्तमान पर्याय हो सब गुण की ऐसा भी उसमें गुण है। पर्याय करूँ तो होगी, ऐसी बात है नहीं। एक बात। और भावपर्याय है, उसका अभाव होता है, तो उस पर्याय का व्यय मैं करूँ ऐसा भी नहीं है। क्योंकि भाव-अभाव नाम का एक गुण आत्मा में है। समझ में आया? आहाहा! वह व्यय होकर... आहाहा!

वीतरागमार्ग तो देखो! ओहोहो! तीन लोक का नाथ जिनेश्वरदेव का पंथ, किसी दूसरी जाति का है, भाई! दुनिया के साथ कहीं मेल (खाये ऐसा नहीं)। कठिन (पड़े),

इसलिए लोगों 'सोनगढ़ का एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है...' (ऐसा कहते हैं)। कहो प्रभु! तुम भी प्रभु हो। सिद्धान्त में तो ऐसा लिया है कि समकिती को पर्यायदृष्टि उड़ गयी है, तो द्रव्य (अपेक्षा) से पर द्रव्य—(जीव) उसका साधमी है क्योंकि अपनी पर्यायदृष्टि उड़ गयी है तो दूसरे की पर्याय नहीं देखता। पर्याय से रहित द्रव्य उसका है (ऐसा देखते हैं)। समझ में आया? आहाहा! द्रव्य साधर्मी है, भगवान है। अपने पर्याय का लक्ष्य उसमें छूटा तो पर की पर्याय है, उस पर से लक्ष्य छूट गया है, तो उसका द्रव्य है, उसे देखते हैं। आहाहा! भगवानस्वरूप परमात्मा है अन्दर। ऊपर से शरीर आदि या राग आदि परिणाम चाहे वह हो, परन्तु अन्दर तो इससे भिन्न भगवान है। आहाहा! ऐसी दृष्टि हुए बिना क्रमबद्ध की और धर्म की निर्मल पर्याय उत्पन्न होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? पहले बहुत बात होती थी। बहुत बार चल गया न, इसलिए नहीं तो शुरुआत में यह व्याख्यान होता था।

अपने परिणामों से उत्पन्न... ये परिणाम (कौन से)? निर्मल लेना। विकार होता है साथ में, परन्तु उसका ज्ञान होता है, ये (ज्ञान) परिणाम उसका लेना है। आहाहा! समझ में आया? विकार तो होता है परिणाम में, परन्तु वह अपना परिणाम नहीं। क्योंकि क्रमबद्ध का जब निर्णय होता है, तब तो द्रव्य-ज्ञायक पर दृष्टि पड़ती है। ज्ञायक में तो कोई विकारी गुण तो है ही नहीं, अविकारी अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। आहाहा! ये अनन्त गुण का पिण्ड का स्वीकार जहाँ हुआ तो पर्याय में विकृति होती है, पर ये अपने परिणाम नहीं। उससे रहित परिणाम हैं, वे अपने परिणाम हैं। क्रमसर होता है, होना हो तब होता है, तो भी निर्मल ही अपने परिणाम हैं। समझ में आया?

विकृत अवस्था ज्ञानी को भी होती है, परन्तु वह अपना परिणाम है, ऐसा (उसको) नहीं आता। आहाहा! क्रमबद्ध में विकृत परिणाम भी क्रमसर ही आता है। वह विकृत (परिणाम) जो क्रमसर आता है, उसी समय में विकृति से रहित... क्रमबद्ध के निर्णय में द्रव्य का (निर्णय) किया तो द्रव्य में तो अनन्त गुण हैं। अनन्त गुण निर्मल हैं, तो विकृत अवस्था से रहित क्रमबद्ध का निर्णय करते (हुए) द्रव्य का निर्णय हुआ तो निर्मल पर्याय की ही उत्पत्ति होती है। वह **अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है।** आहाहा! समझ में आया?

यह तो रहस्य का पार न मिले। कहीं पहुँच सकते नहीं अर्थात्... यह तो सन्तों की वाणी—दिगम्बर सन्तों की वाणी तो अलौकिक है। आहाहा! कहीं है नहीं। वेदान्त (सब मिलकर) एक आत्मा है, शुद्ध है—कहते हैं। सुधरेल में बहुत चलती है न! परदेश में भी बहुत चलता है वेदान्त। वेदान्त। एक सर्वव्यापक है... सर्वव्यापक है। मुसलमान में भी ऐसा चलता है। उसमें एक सूफी नाम का मार्ग है, सूफी फकीर। देखा है, हमने देखा है। एक बार बोटाद हम बाहर निकलते थे तो सूफी सामने मिला। मिला तो सामने बड़ा हो गया। वैराग्य दिखता है। फकीर हों। यह माने एक हम हैं, एक खुदा... एक खुदा हम हैं। दो चीज़ है नहीं हैं। हम हैं खुद खुदा यारो... हम हैं खुद खुदा यारो। दूसरी कोई चीज़ है नहीं। ऐसा माननेवाला... हम तो बहुत के परिचय में आये हैं न? हम दरवाजे से निकलते थे। दो फकीर थे। वैराग्य... उदास... उदास... ... (पूछा), कौन हैं? ये सूफी फकीर है। एक खुदा माननेवाले। एक ही खुदा है। सब झूठ है। वेदान्त भी सर्वव्यापक मानते हैं। वेदान्त तो वहाँ तक कहता है कि आत्मा ने आत्मा का अनुभव—दो कहाँ से आये? यहाँ तो आत्मा और आत्मा की पर्याय—दो लेना है। अनुभव है ये पर्याय है। आत्मा त्रिकाली है, ये क्रमबद्ध का जहाँ निर्णय करते हैं तो आत्मा का अनुभव होता है। आत्मा का अनुभव और आत्मा—(ऐसे) दो का वेदान्त निषेध करता है। आत्मा और अनुभव, (यह तो) द्वैत हो गया।—ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! द्वैत ही है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : है; अनुभव की पर्याय है, विकार की पर्याय भी है, परन्तु उस पर्याय से रहित अपना परिणमन होता है। परन्तु है तो सही न? है तो उससे रहित हुआ न? आहाहा! नहीं हो तो उससे रहित क्या (होना)? छह द्रव्य से रहित आत्मा है। तो छह द्रव्य हैं या नहीं? अपने आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अनन्त आत्मा आदि सब हैं। छह द्रव्य का... एक समय की पर्याय में द्रव्य का जहाँ आश्रय होकर निर्णय होता है तो उस पर्याय में अपने द्रव्य-गुण का भी ज्ञान होता है, वह पर्याय में ज्ञान का स्व-परप्रकाशक स्वभाव अपने से (प्रगट) होता है। ... स्व-परप्रकाशक की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! पर को जानू, यह भी नहीं। पर को जानना ये भी है नहीं। पर सम्बन्धी अपना

ज्ञान जो है, उसको ही जानते हैं। पर को छूता नहीं तो पर को जाने कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है, भैया! बात तो ऐसी है। आहाहा! बराबर न समझे तो रात्रि को पूछना। ऐसा नहीं समझना कि हमारे नहीं पूछते। सब को पूछना। आहाहा!

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... यहाँ तो (कहा कि) **अपने परिणामों से...** भाई! **अपने परिणामों से...** विकार ये अपने परिणाम नहीं, जीव का ये परिणाम ही नहीं। उस समय में विकृत (परिणाम) होता है, परन्तु उसी समय में द्रव्य की दृष्टि से क्रमबद्ध का निर्णय है, तो विकार रहित अपना परिणाम क्रमबद्ध में होता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो एक लाईन का अर्थ तीसरी बार होता है। परसों किया था, कल किया था, आज किया। पार नहीं, वीतरागमार्ग के शास्त्र में रहस्य का पार नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ के श्रीमुख से दिव्यध्वनि में आयी है। दिव्यध्वनि में से 'ॐकार धुनी सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।' आहाहा! भव्य प्राणी... आहाहा!

३८ गाथा में तो ऐसा कहा है, ३८ में कि क्रम-अक्रम... शिष्य पंचम काल का श्रोता है। पंचम काल की बात है न? साधु पंचम काल के हैं न, यह अमृतचन्द्राचार्य आदि? पंचम काल—पंचम आरा। पंचम काल में अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य (हुए और) श्रोता पंचम काल का है। श्रोता को समझते हैं... ३८ गाथा में ऐसा लिया है कि श्रोता सुनता है और सुनकर तुरन्त प्रतिबुद्ध (होता है)—पाते हैं। और ऐसा प्रतिबुद्ध (होता है)—पाते हैं... पाठ है ३८ में। मुझे सम्यग्दर्शन जो हुआ, मिथ्यात्व का नाश हुआ, ये (मिथ्यात्व का) अंकुर कभी उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा! ३८ में है, ३८ गाथा में है। एक ९२ में है। प्रवचनसार ९२वीं गाथा में है।

ये अंकुर... पंचम काल के श्रोता ऐसा कहते हैं। पंचम काल के श्रोता को गुरु ने समझाया—अप्रतिबुद्ध को समझाया। कितने ही ऐसा कहते हैं कि समयसार तो साधु को (ही पढ़ना) चाहिए। परन्तु यहाँ पाठ में तो अप्रतिबुद्ध को समझाया है। आहाहा! अप्रतिबुद्ध समझा... आहाहा! सन्तों ने ऐसी बात ली है कि शिष्य ऐसा कहता है कि प्रभो! हमारे मिथ्यात्व का नाश हुआ, ये मिथ्यात्व का अंकुर अब सादि-अनन्त (काल) में (कभी) उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा! अरे प्रभु! तुम तो छद्मस्थ हो। पंचम

काल के श्रोता अप्रतिबुद्ध था, ऐसा सुना तो इतना जोर आ गया? डाह्याभाई! भगवान! जोर क्या, आत्मा में इतनी ताकत ही है। ओहोहो! 'अप्रतिहत' की बात की है ३८ (गाथा) में, ९२ (गाथा) में। उत्पन्न हुआ, वह हुआ। सम्यग्दर्शन हुआ और पीछे गिर जायेगा (-नाश होगा)—यह बात है ही नहीं। आस्रव अधिकार में लिया है, जरा ज्ञान कराने को (कि) नय से परिच्युत हो तो ऐसा होता है... आस्रव में **नय परिच्युत...** (कलश १२१)।

श्रोता तो ऐसा लिया है कि आहाहा! ऐसे सुनते ही उसे रस आ गया और द्रव्य ऊपर झुक गया। आहाहा! झुक गया और जो अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, तो कहते हैं कि अब हम सम्यग्दर्शन से गिरेंगे और मिथ्यात्व उत्पन्न होगा—यह हमारे नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! ९२ में भी ऐसा कहा है प्रवचनसार में। आगम कुशल से और अपने अनुभव से जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ तो मिथ्यात्व आदि का अंकुर उत्पन्न होगा नहीं। चारित्र की बात दूसरी है। क्योंकि पंचम काल में हैं तो स्वर्ग में जायेंगे तो चारित्र नहीं रहेगा। पंचम काल का साधु है न? केवलज्ञान तो है नहीं। दर्शन में मिथ्यात्व का अंकुर हमको उत्पन्न नहीं होगा। हम चारित्रवन्त हैं (फिर भी) चारित्र का नाश नहीं होगा, ऐसा नहीं। क्योंकि हम पंचम काल में हैं और हमें स्वर्ग में जाना पड़ेगा। क्योंकि केवलज्ञान है नहीं, हमारे पुरुषार्थ में कमी है। यह काल के कारण से नहीं। आहाहा! यहाँ से तो स्वर्ग में जाना पड़ेगा, तो चारित्र से तो रहित होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : चारित्र अप्रतिहत नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र अप्रतिहत नहीं है, ऐसा कहा न। यही कहा। आहाहा! मस्तिष्क में कितनी बात याद आवे, कहीं सब कहा जाये?

चारित्रपाहुड़ में भाव आया है। चारित्रपाहुड़ में पर्याय का... पर्याय अक्षय है। दो बोल हैं न? अमेय। अक्षय और अमेय। पर्याय, हों। द्रव्य-गुण की तो बात क्या करना! आहाहा! द्रव्य की जहाँ अनुभव दृष्टि हुई—मैं पूर्णानन्द प्रभु अभेद अखण्डानन्द हूँ, ऐसी जब दृष्टि हुई—तो कहते हैं... आहाहा! ये पर्याय चारित्रवन्त की... चारित्रवन्त की ली है, हों! अक्षय है और अमेय है। नहीं तो चारित्र तो छूट जायेगा, हमारा चारित्र छूटा तो भी हम तो दूसरे भव में लेंगे ही लेंगे और पूर्ण करेंगे। (कोई कहे), हम पंचम काल

के साधु हैं। हम पंचम काल के नहीं, हम तो हमारे आत्मा के हैं। काल-बाल हमको नडता नहीं। आहाहा! चारित्र की पर्याय में... चारित्र के अधिकार में लिया है वहाँ। उसकी पर्याय अक्षय और अमेय (अर्थात्) पर्याय में मर्यादा नहीं। इतनी समार्थ्य पर्याय में है। क्योंकि अनन्त गुण की पर्याय में एक-एक पर्याय इतनी सामर्थ्यवाली है कि अनन्त गुण को जाने, अनन्त पर्याय को जाने, ऐसी एक ज्ञानपर्याय की सामर्थ्य है, ऐसी सामर्थ्य श्रद्धा की, ऐसी सामर्थ्य चारित्र की, ऐसी सामर्थ्य अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व की आदि प्रत्येक पर्याय की इतनी सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया?

उस पर्याय में, ऐसे कहते हैं कि हमें तो मिथ्यात्व (फिर से) उत्पन्न नहीं होगा। प्रभु! आप भगवान के पास गये नहीं और आपने इतना देखा (-जाना)? आप तो महाव्रतधारी हो न? आप महाव्रतधारी हो और इतना कब देखा(-जाना)? हमारा नाथ ऐसे पुकार करता है। हमारा प्रभु पुकार करता है। यह प्रभु ऐसे कहता है कि हमको मिथ्यात्व अब (फिर से) कभी नहीं होगा। आहाहा! ये क्रमबद्ध का निर्णय करने में दर्शन का निर्णय जो हुआ तो अपना निर्मल परिणाम हुआ, पश्चात् ये निर्मल सम्यक् परिणाम नहीं गिरेगा। समझ में आया? सेठ! ऐसी बात सुनी नहीं हो कभी इतने वर्ष में। पैसे सम्हालने जाये बेचारा। दया करो और व्रत करो, मन्दिर बनाओ। उसके गाँव में मन्दिर नहीं है। मन्दिर बनाते हैं न? नया बनाते हैं न? तुमने बताया था न कि ये नया बनता है। वह मन्दिर के पास में... आहाहा! वह तो जिस समय में जो पर्याय जड़ की होनेवाली है, वह होगी, होगी, होगी। दूसरा करे (तो हो) और दूसरा न करे तो न हो— ऐसा है नहीं। वह यहाँ आया।

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है... आहाहा! पण्डितजी! जीव ही है, (ऐसा निर्णय हुआ) तो विकार का परिणाम दूर कर दिया। आहाहा! जीव ही है... कि क्रमबद्ध का जहाँ निर्णय हुआ... आहाहा! गजब बात है! अमृतचन्द्र आचार्य। गाथा करनेवाले कुन्दकुन्दाचार्य ने तीर्थंकर जैसा काम किया है और अमृतचन्द्राचार्य ने उनके गणधर जैसा काम किया है। आहाहा! अरे! वाणी मिलना मुश्किल, बापू! प्रभु! यह कोई लौकिक बात नहीं, जगत के प्रपंच की बात नहीं, यह तो अन्तर की बात है। आहाहा! **जीव क्रमबद्ध...** आहाहा! इसमें से निकलना रुचता नहीं, इतना इसमें भरा है। आहाहा!

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... विकारादि है तो सही, परन्तु विकार का ज्ञान है, वह अपना परिणाम है। समझ में आया? क्योंकि अकर्तापने की बात है न? अकर्तापने में ज्ञाता-दृष्टा हुआ। ज्ञाता-दृष्टा का परिणाम, वह अपना परिणाम है। उसमें राग आता है, उस राग को जानना, ऐसा ज्ञाता-दृष्टा का परिणाम ही अपना है। आहाहा!

क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... ये परिणाम का क्रमबद्ध। परिणाम में क्रमबद्ध लेना है न? द्रव्य में क्या है? **क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से...** परिणाम में क्रमबद्ध लेना है न? आहाहा! सूक्ष्म है, परन्तु प्रभु! अमृत का घड़ा है वह तो। ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में भी कल्पित बात है। शास्त्र बनाये, वह कल्पित बनाये। वह तो भगवान त्रिलोक के नाथ की वाणी को सर्वज्ञ के मार्गानुसारी-आढ़तिया होकर बात करते हैं। सर्वज्ञ के आढ़तिया हैं मुनि। आढ़तिया समझते हैं न? माल... आहाहा! यह सर्वज्ञ भगवान का माल है प्रत्यक्षपने, श्रुतज्ञानी को परोक्ष है। प्रत्यक्षपने उनका माल है, ये प्रत्यक्षपने बताते हैं। आहाहा! प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ है न। यह तेरी पर्याय जिस समय में होनी है, वह होगी, उस पर से दृष्टि हटा दे। आहाहा! इतना सब होगा... क्या कहते हैं? जिस समय में पर्याय सत् है... उत्पाद-व्ययरूप सत् है न? उत्पाद-व्यय, वह सत् है। व्यय अभावरूप है, परन्तु सत् है। तीनों सत् हैं—उत्पाद सत् है, व्यय सत् है... अभाव सत् है, भाव सत् है, ध्रुव सत् है। और (किसी) सत् को किसी की अपेक्षा नहीं। ऐसा १०१ गाथा में है। प्रवचनसार में आया है। उत्पाद की अपेक्षा ध्रुव को नहीं, आहाहा! ध्रुव की अपेक्षा उत्पाद को नहीं। आहाहा!

यहाँ (कहते हैं कि) जो परिणाम उत्पन्न होता है, वह जीव ही है। यह निर्मल परिणाम उत्पन्न हुआ... आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति... क्रमबद्ध परिणाम में यह परिणाम उत्पन्न हुआ। आहाहा! गजब बात है! यह दिगम्बर शास्त्र। समझे नहीं और समझे बिना वाँचा करे और सामने रखे और सेठिया जैसे पैसेवाले लोग बैठे हों तो जय नारायण करे, उसे कुछ खबर नहीं हो। सेठ! दृष्टान्त देते हैं। सब आते हैं न सेठ। यहाँ एक सेठ है.... तुम्हारे इन्दौर के सेठ वहाँ के मुख्य। हुकमीचन्दजी। हुकमीचन्दजी सुनते थे। यहाँ आ गये हैं। प्रवचनमण्डप उनके हाथ से उद्घाटन किया। राजकुमार भी आये

थे, यह मकान बनाया तब। हुकमीचन्दजी तो सुनकर ऐसे कहते थे कि स्वामीजी का (कथन) पण्डित लोगों को समझना पड़ेगा। ऐसा कहते थे। जरा नरम व्यक्ति है। राजकुमार में ऐसा है नहीं। वे सब गड़बड़ है। यहाँ तो सत्य है, वह सत्य है।

हुकमीचन्दजी तो ऐसे कहते थे... पहले साधारण बात करते थे। पहले जब आये थे, एक के (संवत् २००१) वर्ष में। पहले आये थे एक के वर्ष में, ३५ वर्ष पहले। पहले तो जब सुनी उपादान की बात, तो (कहा) महाराज तो अभी आये हैं न स्थानकवासी में से, तो यह बात बहुत छंछेड़ना नहीं, बहुत छंछेड़ना नहीं, पहले ऐसे कहते थे। छंछेड़ना नहीं क्योंकि... मैंने कहा, छंछेड़ो। सेठ! सब बात मैं निकालूंगा। कि उपादान पर्याय अपने से होती है, पर से नहीं। ढिंढ़ोरा पीटो। यहाँ कुछ एकान्त नहीं। ढूंढ़िया में से आये न... पश्चात् तो अनुकूल कर डाला। कितनी बार आये? तीन बार आये। पहली बार आये थे एक के वर्ष में, दूसरी बार आये थे उद्घाटन के समय पर... दोपहर को (कहा कि) २५००० संस्था को देता हूँ। संस्था को २५००० देता हूँ। पहले एक के वर्ष में। ३५ साल हुए। परन्तु यह मार्ग... अनुकूल बहुत बोलते थे। पण्डित लोगों को भी समझना पड़ेगा। स्वामीजी कहते हैं, वो बराबर समझे नहीं है न। .... आहाहा!

अजीव नहीं... यह परिणाम है, (वह) अजीव नहीं। उसका अर्थ है कि वह परिणाम में राग भी नहीं और अजीव भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग जरा सूक्ष्म है, प्रभु! पकड़ने के लिये बहुत ध्यान रखना चाहिए। बहुत प्रयत्न चाहिए। आहाहा! दुनिया को प्रसन्न रखने की बात करे, रंजन लोकरंजन... तारणस्वामी कहते हैं न कि सारी दुनिया का लोकरंजन करते हैं। जनरंजन। यहाँ अष्टपाहुड़ में आया है। जनरंजन... लोगों को ठीक कैसे पड़े। अरे! ठीक क्या? (जो) है, वह कह न? जनरंजन-दुनिया प्रसन्न हो, ऐसा करो, देश सेवा करो, एक-दूसरे को मदद करो, साधर्मी को मदद करो। परन्तु यहाँ कहते हैं कि कोई मदद-फदद कर सकता नहीं। आहाहा! जड़ की पर्याय... आहाहा! मुनि-सच्चे सन्त हैं, (उन्हें) आहार-पानी देते हैं, ये आहार-पानी देने की क्रिया आत्मा कर सकता नहीं। आहाहा! उस समय जो विकल्प आया... उस समय ज्ञानी भी आहार देता है, परन्तु विकल्प से रहित निर्मल परिणाम का स्वामी है वह निर्मल परिणाम उससे उत्पन्न होता है। क्रमबद्ध से निर्मल परिणाम उत्पन्न होता है।

आहाहा! मैं राग भी नहीं और मैं आहार मुनि को देता हूँ, (उस क्रिया का) भी धनी-स्वामी नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बात है।

वह लोग यहाँ कहे, श्वेताम्बर की यात्रा करे और यह शत्रुंजय की। यात्रा करके नीचे उतरे और साधु को आहार दे तो बहुत लाभ होगा। उनके साधु चाहे जैसे हों। साधु कहाँ था? श्वेताम्बर में साधु... गृहीत मिथ्यात्व है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? मोक्षमार्गप्रकाशक में आया न पंचम अध्याय में? अन्यमत में... अन्यमत में डाला है। श्वेताम्बर, स्थानकवासी सबको अन्यमत में डाला है। दुःख लगे... परन्तु सत्य है, यह सत्य है। तेरे लाभ का कारण तो यह है। तुझे अनुकूल बोले... विपरीत हो जाये, नरक और निगोद मिलेगा। प्रभु! यह रंजन करने जायेगा, नरक, निगोद मिलेगा। आहाहा!

यहाँ बात कहते हैं, **जीव ही है, अजीव नहीं।** यह अनेकान्त। जीव भी है परिणाम का कर्ता और अजीव भी परिणाम का कर्ता है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा! वास्तव में तो क्रमबद्ध के निर्णय में जब सम्यग्दर्शन हुआ, उस परिणाम के काल में राग है, परन्तु उस समय राग सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने से होता है। राग है तो ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! यह अपने परिणाम का कर्ता अजीव नहीं। अर्थात् क्या कहते हैं? जो अपने में ज्ञाता-दृष्टा का परिणाम हुआ, तो राग को जाना, यह भी नहीं। अपने को जाना है, पर्याय में (अर्थात्) राग सम्बन्धी का ज्ञान अपना है, उसको जाना है। समझ में आया? राग भी अजीव है, तो अजीव का ज्ञान यहाँ हुआ है, यह भी व्यवहार कहने में आया है। उस समय में अपनी स्व-परप्रकाशक शक्ति से अजीव सम्बन्धी पर का ज्ञान अपने से अपने में हुआ है, पर के कारण से नहीं। राग का ज्ञान राग है तो हुआ—ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अजीव नहीं... अजीव परिणाम नहीं। आहाहा! इस परिणाम का कर्ता अजीव नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा... यह क्रमसर कहा (अर्थात्) जो होने का (है, वह) होगा ही होगा, ऐसा जब अकर्तापना हो जाता है, तब अकर्तापने का ज्ञाता हो जाता है। ज्ञाता होते ही दृष्टि ज्ञान पर जाती है। आहाहा! इस परिणाम में जो राग को जानने (रूप) परिणाम हुआ तो राग के कारण से जानना हुआ, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग का भी ज्ञान हुआ न? भावगुण कहा न? (पहले) भावगुण के कारण से विकृतपने

(परिणाम) षट्कारक से होते हैं, परन्तु (दूसरे) भावगुण के कारण से विकृत रहित उसका परिणाम है। वो भावगुण, होनेवाला होगा, ये दूसरा (गुण) है। एक भावगुण है, उसमें (होनेवाली) पर्याय होगी, वह दूसरा (गुण) है और एक भाव (गुण का कार्य) विकृति रहित भाव है। दो भावगुण हैं ४७ (शक्ति) में। समझ में आया? तो दूसरा भाव (गुण) ऐसा है कि दृष्टि जब द्रव्य पर गयी और क्रमबद्ध का निर्णय हुआ, तो राग है तो राग का ज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं। राग का तो कर्ता(पना) आता नहीं, परन्तु राग का ज्ञान हुआ ऐसा भी व्यवहार है। यह अपने स्व-परप्रकाशक का ज्ञान अपने परिणामों से उत्पन्न होता है, यह राग से और अजीव से नहीं। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)